इकाई 8 स्तरीकरण के सिद्धांत और संश्लेषण: लेंस्की, लहमान, बर्घ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 सामाजिक स्तरीकरण की अलग-अलग व्याख्याएं
8.3 सामाजिक स्तरीकरण का समकालीन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य
8.4 प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य
8.5 द्वंद्व सिद्धांत
8.6 संश्लेषण की दिशा में
8.6.1 प्रारंभिक प्रयास
8.7 पियरे वैन डेन बर्घ का महान संश्लेषण सिद्धांत
8.8 एन. लहमान का सामाजिक व्यवस्था सिद्धांत
8.9 गेरहार्ड लेंस्की का सत्ताधिकार और विशेषाधिकार सिद्धांत
8.10 सारांश
8.11 शब्दावली
8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- सामाजिक स्तरीकरण का समकालीन परिप्रेक्ष्य दे सकेंगे;
- बर्घ के महान संश्लेषण सिद्धांत की रूपरेखा बता सकेंगे;
- लहमान के व्यवस्था सिद्धांत के बारे में बता सकेंगे; और
- लेंस्की के सत्ताधिकार और विशेषाधिकार सिद्धांत पर चर्चा कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमने सामाजिक स्तरीकरण के विषय पर रचे साहित्य की प्रगति को समझने के लिए द्वंद्वात्मकता की विधि का प्रयोग करने का प्रयास किया है। इसमें हमने इन तीन समाजशास्त्रियों, पियरे वैन डेल बर्घ, एन. लहमान और गेरहार्ड लेंस्की की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया है, जिन्होंने सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांतों में मौजूदा ध्रुविताओं के दायरे से बाहर निकल कर इन्हें एक संयोजित सिद्धांत के रूप में संश्लेषित करने का प्रयास किया है।

आइए, पहले हम सामाजिक असमानता को लेकर प्रचलित दो परस्पर विरोधी मतों के बारे में जानें। इनमें से एक है रूढ़िवादी मत रखने वाले विद्वान जिनकी दृष्टि में सामाजिक असमानताएं स्वाभाविक, प्रकृतिसम्मत और न्यायोचित हैं। दूसरा खेमा आमूल परिवर्तनवादी विद्वानों का है जिनके मतानुसार सभी मानवों से सिद्धांततः समतावादी व्यवहार होना चाहिए और इसे वे एक ऐसे सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्य के रूप में लेते हैं जिसे प्राप्त किया जा सकता है। सामाजिक स्तरीकरण पर लिखे गए समाजशास्त्रीय साहित्य में भी हमें इसी तरह दो समानांतार धाराएं देखने को मिलती हैं। इसमें एक धारा है संरचनात्मक प्रकार्यवाद, जो रूढ़िवादी मत की प्रतिनिधि है। दूसरी धारा द्वंद्वात्मक या मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य है जो आमूल परिवर्तनवादीधारा का प्रतिनिधित्व करती है। अब हम यहां यह जानेंगे कि इन दो विरोधी सिद्धांतों का तीनों समाजशास्त्रियों ने किस तरह संश्लेषण करने का प्रयत्न किया है।

8.2 सामाजिक स्तरीकरण की अलग-अलग व्याख्याएं

सामाजिक असमानता या स्तरीकरण एक विश्वव्यापी वास्तविकता है। सभी समकालीन समाजों में संपत्ति, प्रतिष्ठा और सत्ताधिकार के मामले में असमानताएं किसी न किसी सीमा तक अवश्य पाई जाती हैं। उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों से पता चलता है कि असमानताएं प्राचीन समाजों की भी विशिष्टता रही हैं। असमानताएं सामाजिक दृष्टि से एक निश्चित पैटर्न में बंधी होती हैं और उन्हें समाज से कुछ वैधता प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, एक समूह के कानून और मानदंड उसमें विद्यमान असमानता की व्यवस्था को संचालित करते हैं। यही कारण है कि सामाजिक स्तरीकरण समाजशास्त्रियों और अन्य समाज विज्ञानियों के लिए एक ज्वलंत प्रश्न रहा है। उन्होंने विभिन्न समाजों में विद्यमान असमानता के ढांचों और प्रचलनों का गंभीर विश्लेषण वर्णन करने के साथ-साथ इसकी व्याख्या करने या सिद्धांतों की स्थापना करने का भी काम किया है।

समाजशास्त्रियों और अन्य समाज-विज्ञानियों के अलावा सामाजिक असमानता साधारण चिंतक, दार्शनिकों और धर्मगुरुओं के लिए भी चिरकाल से चिंतन का विषय रही है। जहां एक ओर हिन्दू धर्म विभिन्न जाति समूहों में व्याप्त असमानताओं को उचित ठहराता है, तो वहीं धार्मिक दर्शनों में असमानता के बर्ताव से दूर रहने की शिक्षा दी गई है और अपने धर्मावलंबियों से सभी मनुष्यों के साथ समानता का व्यवहार करने का आह्वान किया गया है। इसी प्रकार पश्चिमी चिंतकों और दार्शनिकों में इस विषय को लेकर मतभेद रहे हैं। मनुष्यों से अलग-अलग बर्ताव करना और उन्हें असमान पारितोषिक देना क्या उचित और न्यायसंगत है? यह प्रश्न बहस का मुद्दा रहा है। इस विषय पर हम दो भिन्न दृष्टिकोणों को पहचान सकते हैं। कुछ लोग रूढ़िवादी या पुरातनपंथी मत रखते हैं तो अन्य दार्शनिकों ने असमानता की मौजूदा व्यवस्थाओं की मीमांसा विकसित कर आमूल परिवर्तनकारी विकल्प सुझाए हैं।

यूरोप के पुरातनपंथी चिंतकों ने यह तर्क देने का प्रयास किया कि चूंकि सामाजिक असमानताएं हर जगह विद्यमान हैं इसलिए वे प्राकृतिक और अपरिहार्य हैं। इसे दूसरी तरह से कहें तो उन्होंने अलग-अलग आधार पर असमानताओं को सही ठहराया। एडम स्मिथ जैसे आधुनिक, पश्चिमी जगत के अग्रणी उदार दार्शनिक और आधुनिक अर्थशास्त्र के संस्थापक ने मुक्त बाजार व्यवस्था की पैरवी करते हुए सामाजिक असमानताओं को उसके लिए सही ठहराया। उनका कहना था कि बाजार में व्यक्ति अपने-अपने निजी हितों को किसी राजनीतिक प्रभुसत्ता के हस्तक्षेप या वितरण के नैतिक सिद्धांत के बिना ही साधते हैं जिसमें यह उनकी क्षमताओं की परीक्षा लेता है और उनकी क्षमता के अनुसार उन्हें अलग-अलग तरीके से पुरस्कृत करता है।

इसी प्रकार जो विद्वान डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत से अभिभूत थे उन्होंने भी मनुष्य के बीच व्याप्त असमानताओं को सही ठहराया। सामाजिक डार्विनवादियों ने तर्क दिया कि व्यक्तियों की भी पादप और जंतुओं की प्रजातियों की तरह छंटाई और चयन होता है। चयन की इसी प्रक्रिया के जरिए गुणवान व्यक्तियों को समाज में महत्व और प्रतिष्ठा वाले पदों पर बिठाया गया जबकि साधारण लोगों से श्रमजीवी जनसमूह या वर्गों का निर्माण हुआ। जैसा कि डब्लू.जी. समर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *फोकवेज* में तर्क दिया है, "वर्ग आधारित विषमताएं अनियवार्यत: मनुष्य की सामाजिक उपयोगिता का पैमाना था, जो :वयं में मूलत: उसकी नैसर्गिक योग्यता को मापने का पैमाना था।" इस रूढ़िवादी सिद्धांत के एक अन्य पैरोकार इटली के प्रसिद्ध विद्वान गाएत्नो मोस्का थे। इनका भी यही मत था कि विषमताएं मानव जीवन की एक अपरिहार्य वास्तविकता हैं। उनका कहना था कि चूंकि मानव समाज राजनीतिक संगठन के बिना काम नहीं कर सकता था, इसलिए इन संगठनों को शक्ति-सत्ताधिकार में विषमताओं को जन्म देना ही था।

मगर वहीं आधुनिक पश्चिम दर्शन में आमूल परिवर्तनवादी चिंतन की भी एक लंबी परंपरा रही है। जिसने रूढ़िवादी मत के खिलाफ अपने तर्क रखे हैं। आमूल परिवर्तनवादी इस बात पर जोर देते रहे हैं कि मनुष्यों के साथ असमान रूप से व्यवहार यानी उनके साथ भेदभाव बरतना नैतिक दृष्टि से गलत है। इनका यह तर्क भी है कि एक ऐसे समाज का निर्माण करना संभव है जिसमें सभी मनुष्यों के साथ समान व्यवहार हो और उन्हें समान अधिकार मिलें। लॉक और रुसो जैसे दार्शनिकों ने बड़े जोरदार ढंग से तर्क

रखा कि आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में सभी मनुष्यों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। आधुनिक यूरोप के सबसे सिद्ध दार्शनिकों में मार्क्स और एंजेल्स की रचनाओं में ही हमें रूढ़िवादी दृष्टिकोण की सबसे व्यवस्थित और सुविकसिल मीमांसा मिलती है। पूंजीवादी विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था का गहराई से विश्लेषण करते हुए उन्होंने रूढ़िवादी या "उदार बुर्जुआ" दृष्टिकोण के जवाब में एक आमूल परिवर्तनवादी प्रतिस्थापना (एंटी-थीसिस) प्रस्तुत की जिसे हम समाजवादी सिद्धांत के नाम से जानते हैं।

8.3 सामाजिक स्तरीकरण का समकालीन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, आधुनिक यूरोप के कालजयी दार्शनिकों ने जिस तरह से सामाजिक असमानता की व्याख्या की है और सामाजिक स्तरीकरण के प्रश्न से समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत जिस तरह से जूझ रहे हैं उसमें हमें एक रोचक समानता नजर आती है। इस विषय में दो सबसे प्रभावी परिप्रेक्ष्य हैं प्रकार्यवादी सिद्धांत और द्वंद्ववादी सिद्धांत। ये दोनों परिप्रेक्ष्य ऊपर बताए गए रूढ़िवादी और आमूल परिवर्तनवादी दृष्टिकोणों से काफी समानता रखते हैं। ये दोनों परिप्रेक्ष्य इस विषय पर एक मानकीय दृष्टिकोण से शुरुआत करते हैं। प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य या मतैक्य सिद्धांत सामाजिक विषमता की अपरिहार्यता और सामाजिक व्यवस्था के लिए इसके सकारात्मक कार्य पर जोर देता है। दूसरी ओर, द्वंद्ववादी सिद्धांत इसे उन हितों के रूप में देखता है जिन्हें एक विशेष समाज में विद्यमान असमानता के ढांचे में कुछ खास व्यक्तिय और समूह दूसरे की कीमत पर साधते हैं। इसीलिए वे इसकी अवैधता और नकारात्मक पहलू को उठाते हैं।

8.4 प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य

जैसा कि हमें मालूम है, प्रकार्यवादी या संरचनात्मक प्रकार्यवादी सिद्धांत समाज को एक सजीव समेकित तंत्र के रूप में देखता है, जिसके विभिन्न अंग या इकाइयां उसकी अनिवार्य जरूरतों को पूरा करने का काम करती हैं। ये सिद्धांत सामाजिक स्तरीकरण को भी इसी तरह आवश्यकताओं, अपेक्षाओं के रूप में लेते हैं, सामाजिक असमानता के पैटर्न जिनकी पूर्ति समग्र समाज के लिए करते हैं। इस प्रकार सामाजिक असमानता उनके लिए सिर्फ एक अपरिहार्य वास्तविकता ही नहीं बल्कि व्यवस्था की जरूरत भी है। सामाजिक स्तरीकरण के प्रकार्यवादी सिद्धांतकारों में सबसे प्रमुख टैलकॉट पारसंस और किंग्सले डेविस हैं।

जैसा कि हम बता चुके हैं, प्रकार्यवादी मत का मूल प्रस्थान बिंदु यह है कि स्तरीकरण समाज की जरूरतों से उत्पन्न होता है न कि व्यक्तियों की जरूरतों और इच्छाओं से। पारसंस के अनुसार हर समाज के कुछ साझे मूल्य होते हैं जो समाज की जरूरतों, उसकी अपेक्षाओं से जन्म लेती हैं। अब चूंकि सभी समाजों की ये जरूरतें कमोबेश समान होती हैं इसलिए ये मूल्य भी पूरे विश्व में एक जैसे ही होते हैं। इन मूल्यों में कोई अंतर होता है तो सिर्फ इन की सापेक्षिक श्रेणी में। एक समाज कार्यकुशलता को स्थिरता से अधिक महत्व दे सकता है तो दूसरे समाज में कार्यकुशलता से अधिक महत्व स्थिरता को मिल सकता है। मगर हर समाज को कार्यकुशलता और स्थिरता दोनों को कुछ हद तक महत्व देना चाहिए। सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था अनिवार्यतः उस समाज की मूल्य व्यवस्था की अभिव्यक्ति है। जो पद-स्थान समाज द्वारा निर्धारित मानदंडों पर खरे उतरते हैं उन्हें उन पद-स्थानों से अधिक पारितोषिक दिया जाता है जिनका समाज की दृष्टि में महत्व कम है।

इसी प्रकार, डेविस इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि स्तरीकरण प्रत्येक मानव समाज की दो विशिष्ट साझी जरूरतों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। पहली, समाज में सबसे महत्वपूर्ण पद-स्थानों को सबसे योग्य व्यक्तियों से भरना चाहिए। दूसरी, समाज को महत्वपूर्ण पद-स्थानों पर आसीन लोगों को कम महत्व के पदों पर आसीन लोगों से अधिक पुरस्कार देना चाहिए। वह कहते हैं, "सामाजिक विषमता इस प्रकार अचेतन रूप से विकसित की गई युक्ति है जिससे समाज यह सुनिश्चित करता है कि सबसे महत्वपूर्ण पद-स्थानों को पूरे विवेक से सबसे सुयोग्य व्यक्तियों से ही भरा जाए।"

डेविस के अनुसार अत्यधिक महत्वपूर्ण पद-स्थानों से जुड़े पारितोषिकों के स्वरूप को दो महत्वपूर्ण कारक तय करते हैं: i) इन पद-स्थानों का समाज के लिए प्रकार्यात्मक महत्व, ii) इस श्रेणी के लिए सुयोग्य व्यक्तियों की सापेक्षिक दुर्लभता। उदाहरण के लिए, एक डॉक्टर प्रकार्य की दृष्टि से समाज के लिए एक मेहतर से अधिक महत्वपूर्ण है। डॉक्टर बनने के लिए जरूरी योग्यता हासिल करने के लिए लंबा प्रशिक्षण चाहिए। इस कारण समाज में डॉक्टर बड़ा दुर्लभ होता है और इसीलिए उसके लिए अधिक पारितोषिक तय किए जाते हैं। जब चूंकि सभी पद-स्थान सामाजिक महत्व के नहीं हो सकते और न ही महत्वपूर्ण पद-स्थानों के लिए सभी व्यक्ति सामाजिक रूप से योग्य हो सकते हैं, इसलिए उनमें असमानता अपरिहार्य हो जाती है। डेविस तर्क देते हैं कि यह सिर्फ अपरिहार्य ही नहीं है बल्कि यह हर व्यक्ति के लिए अनिवार्यत: लाभकारी है क्योंकि हर व्यक्ति का जीवन और कल्याण समाज के अस्तित्व और उसके कल्याण पर निर्भर करता है।

8.5 द्वंद्व सिद्धांत

द्वंद्व सिद्धांत की प्रेरणा कार्ल मार्क्स की कृतियां रही हैं, जिन्होंने पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था की विस्तृत मीमांसा तैयार की और सभी के लिए सामाजिक समानता के सिद्धांत के आधार पर एक समाजवादी समाज की स्थापना का दर्शन दिया। जैसा कि लेंस्की तर्क देते हैं, मार्क्स पहले विद्वान थे जिन्होंने उदार अर्थशास्त्रियों और प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों द्वारा रचित 'रूढ़िवादी प्रस्थापना' के प्रत्युत्तर में 'आमूल-परिवर्तनवादी प्रतिस्थापना' प्रस्तुत की थी।

अभ्यास 1

प्रकार्यवादी और द्वंद्व जैसे दो भिन्न परिप्रेक्ष्यों से क्या एक ऐसा नजरिया निकल सकता है जो दोनों को लेकर चलता हो? अगर निकल सकता है तो कैसे? इस प्रश्न पर अपने अध्ययन केन्द्र के सहपाठियों के साथ चर्चा कीजिए और अपनी नोटबुक में टिप्पणी लिखिए।

प्रकार्यवादियों के विपरीत, द्वंद्व सिद्धांत सामाजिक स्तरीकरण के प्रश्न का समाधान तलाशने के लिए समाज की अमूर्त धारणा लेकर नहीं चलता जिसकी अपनी कुछ जरूरतें हों। बल्कि वह मानकर चलता है कि समाज विभिन्न व्यक्तियों और समूहों से बनता है जिनकी कुछ जरूरतें, अपेक्षाएं और हित होते हैं। यही जरूरतें और हित द्वंद्ववादी सिद्धांतकारों के लिए प्रस्थान बिंदु हैं। प्रकार्यवादी समाज और सामाजिक असमानता के अपने विश्लेषण में शक्ति या सत्ताधिकार की अवधारणा के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। लेकिन द्वंद्ववादी सबसे पहले सत्ताधिकार के प्रश्न से ही अपनी बात शुरू करते हैं। उनकी नजर में समाज एक रंगमंच है जिसमें उपलब्ध दुर्लभ संसाधनों और समाज में प्रतिष्ठित पद-स्थानों के लिए व्यक्तियों और समूहों में संघर्ष होता है। जो लोग सत्ताधिकार संपन्न और शक्तिशाली हैं वे अपनी ताकत के बूते प्रतिष्ठित, महत्वपूर्ण पद-स्थानों को हथिया लेते हैं। कुछ समूहों के अन्य समूहों पर प्रभुत्व से ही समाज में विषमताएं जन्म लेती हैं। उदाहरण के लिए, जो लोग धनी हैं वे अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में पढ़ने भेजते हैं और यही कारण है कि वे आगे चलकर उन पद-स्थानों के लिए स्पर्धा कर लेते हैं जिनका महत्व और मान अधिक है। दूसरी ओर, गरीब अपने बच्चों को साधारण स्कूलों में भी नहीं भेज पाते इसलिए वे धनी और शक्तिशाली लोगों के साथ कभी स्पर्धा नहीं कर पाते हैं। इन दोनों मतों की तुलना करते हुए लेंस्की लिखते हैं:

प्रकार्यवादी समान हितों की बात करते हैं जो समाज के सभी सदस्यों के साझे होते हैं। लेकिन द्वंद्ववादी ऐसे हितों की बात करते हैं जो उन्हें बांटते हैं, विभाजित करते हैं। प्रकार्यवादी सामाजिक संबंधों से मिलने वाले लाभों की बात करते हैं, मगर द्वंद्ववादी सिद्धांतकार प्रभुत्व और शोषण के तत्वों को महत्व देते हैं। प्रकार्यवादियों के अनुसार सामाजिक एकता का आधार मतैक्य है, तो द्वंद्ववादी सिद्धांतकार बाध्यता को इसका आधार बताते हैं। प्रकार्यवादी में मानव समाजों को सामाजिक व्यवस्थाओं के रूप में देखते हैं तो द्वंद्ववादी सिद्धांतकार उन्हें रंगमंच के रूप में पाते हैं जिस पर सत्ताधिकार और विशेषाधिकारों के लिए संघर्ष होता है।

इन दोनों मतों को आम तौर पर एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत माना जाता है। मगर वहीं कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जिनका मानना है कि इन दोनों परिप्रेक्ष्यों में कई बाते समान हैं। इन विद्वानों का तर्क है कि द्वंद्व और मतैक्य दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किसी भी समाजशास्त्रीय सिद्धांत को सामाजिक यथार्थ के सभी पहलुओं को लेकर चलना चाहिए। कुछ समाजशास्त्रियों ने इन ध्रुविताओं के दायरे से बाहर निकलकर समाज और सामाजिक स्तरीकरण के एक एकीकृत या संयोजित सिद्धांत की रचना की है, जिसमें दोनों दृष्टिकोणों को साथ मिलाने का प्रयास किया गया है। डाहरेंडॉर्फ, लेंस्की, बर्घ और लहमान जैसे समाजशास्त्रियों ने यह काम किया है।

8.6 संश्लेषण की दिशा में

इस शब्द को जर्मन दार्शनिक हेगेल ने अपने द्वंद्वात्मक सिद्धांत के जरिए लोकप्रिय बनाया था। उनके विचारों के अनुसार संपूर्ण मानव चिंतन विरोध या निषेध की प्रक्रिया से गुजरता है। एक विशेष विचार या प्रस्थापना ('थीसिस') एक विरोधी विचार या प्रतिस्थापना ('एंटी-थीसिस') के विकास की ओर ले जाती है। द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के जरिए एक नए विचार का संश्लेषण होता है जो प्रस्थापना ('थीसिस') और प्रतिस्थापना ('एंटी-थीसिस') दोनों के मान्य बिन्दुओं को जोड़ता है और प्रश्न को एक अलग धरातल से देखता है। जैसा कि लेंस्की कहते हैं, "प्रस्थापना ('थीसिस') और प्रतिस्थापना ('एंटी-थीसिस') दोनों अनिवार्यत: असमानता के नियामक सिद्धांत हैं जिनका सरोकार नैतिक मूल्यांकन और न्याय के प्रश्न से रहता है। मगर संश्लेषण ('सिंथेसिस') अनिवार्यत: अनुभ्वजन्य संबंधों और उनके कारणों से होता है।" दूसरे शब्दों में, प्रस्थापना और प्रतिस्थापना वैचारिक से बनते हैं, लेकिन संश्लेषण ('सिंथेसिस') अनुभवजन्य सूचनाओं के संग्रहण पर निर्भर करता है। यह मानव समाज में व्याप्त असमानता की युगों पुरानी समस्या के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि के आधुनिक अनुप्रयोग का परिणाम है।

8.6.1 प्रारंभिक प्रयास

सामाजिक विषमता के विषय पर स्थापित रूढ़िवादी और आमूल परिवर्तनवादी धारणाओं के दायरे से बाहर जाने का सबसे प्रारंभिक प्रयास हम जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर की रचनाओं में पाते हैं। हालांकि उन्होंने चिंतन की इन दोनों परंपराओं को जोड़ने का कोई सचेतन प्रयास नहीं किया था, मगर इन विषयों पर उन्होंने जो लिखा है, वह उनके विश्लेषणधर्मी अध्ययन को दर्शाता है। इसमें उन्होंने दोनों परिप्रेक्ष्यों की ओर से महत्वपूर्ण दृष्टि डाली है, जो हमें ध्रुविताओं और नैतिक दृष्टिकोण के दायरे से बाहर ले जाती है। उदाहरण के लिए, वर्ग की अवधारणा का विवेचन करते हुए वेबर हालांकि मार्क्स से सहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि यह सामाजिक संरचना या ढांचे का एक महत्वपूर्ण पहलू है, लेकिन वह मार्क्स के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि वर्ग का अस्तित्व समाज को अनिवार्यत: वर्ग संघर्ष की ओर ले जाता है। इसी प्रकार मार्क्स के विपरीत वेबर 'सत्ताधिकार' और 'प्रतिष्ठा' का अर्थ अनिवार्यत: 'वर्ग' से नहीं लेते। इसके बावजूद वेबर कहते हैं कि पूंजीवादी समाज के ढांचे पर जो उन्होंने कहा है उसे ही आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक स्तरीकरण के द्वंद्ववादी और प्रक्रियावादी सिद्धांतों की तुलना कीजिए और उनमें अंतर बताइए। पांच पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2) सामाजिक स्तरीकरण के दृष्टिकोणों के संश्लेषण की दिशा में आरंभिक प्रयासों के बारे में पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

वेबर के अलावा सामाजिक स्तरीकरण के दोनों परिप्रेक्ष्य के संश्लेषण के प्रयास हमें विल्फ्रेडो पैरेटो, पिटिरिम सोरोकिन और स्टैन्सिलॉव ओसोवस्की की रचनाओं में मिलते हैं। कुछ समय पहले पियरे वैन डेन बर्घ, गेरहार्ड लेंस्की और लहमान ने भी ऐसा प्रयास किया।

8.7 पियरे वैन डेन बर्घ का महान संश्लेषण सिद्धांत

अपने एक शोध लेख, "डायलेक्टिक ऐंड फंक्शनलिज्म: टुवार्ड ए थ्योरेटिकल सिंथेसिस" (द्वंद्वात्मकवाद और प्रकार्यवाद: सैद्धांतिक संश्लेषण) में पियरे वैन डेन बर्घ ने समाजशास्त्रीय सिद्धांत स्थापना की दो मुख्य परंपराओं में विद्यमान समान तत्वों को पहचानने का प्रत्यत्न किया था, जिसके लिए उन्होंने हेगेल के संश्लेषण सिद्धांत का प्रयोग किया। उनका यह लेख *अमेरिकन सोश्योलॉजिकल रिव्यू* में 1963 में छपा था।

बर्घ इस लेख में तर्क देते हैं कि प्रकार्यवाद और मार्क्सवादी, दोनों द्वंद्व सिद्धांत में हर एक सामाजिक यथार्थ के दो में से एक अनिवार्य पहलू को महत्व देते हैं। "इनमें से हर सिद्धांत सिर्फ सामाजिक यथार्थ के दोनों पहलुओं में एक को ही विशेष महत्व नहीं देता जो कि एक दूसरे के पूरक तो हैं ही, एक दूसरे में अभिन्न रूप से गुंथे हुए भी हैं। बल्कि कुछ विश्लेषणात्मक सिद्धांत दोनों दृष्टिकोणों पर समान रूप से लागू होते हैं।" लेकिन सिर्फ यह कह देना ही काफी नहीं होगा कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हमें यह भी सिद्ध करना होगा कि दोनों को मिलाया जा सकता है। बर्घ के अनुसार दोनों दृष्टिकोणों के घटकों को बनाए रख कर और उनमें परिवर्तन करके हम समाज के एक ही ऐसे एकीकृत सिद्धांत की रचना कर सकते हैं। बर्घ बताते हैं कि ये दोनों सिद्धांत चार महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर मिलते हैं।

पहला, दोनों दृष्टिकोण स्वभाव में साकल्यवादी हैं क्योंकि दोनों समाज को एक तंत्र के रूप में देखते हैं, जिसके परस्पर संबंद्ध और परस्पर निर्भर अंग होते हैं। मगर इसके विभिन्न अंगों के परस्पर संबंध को लेकर दोनों का अलग-अलग नजरिया है। प्रकार्यवाद अंगों की आपसी परस्पर निर्भरता को ही महत्व देता है तो वहीं द्वंद्वात्मक सिद्धांत व्यवस्था के विभिन्न अंगों के बीच द्वंद्वपूर्ण संबंधों की ही बात करता है। इसलिए एक पहलू की कीमत पर दूसरे पहलू को अत्यधिक महत्व देने के लिए दोनों सिद्धांतों की आलोचना की गई है। बल्कि व्यवस्था या तंत्र की अवधारणा को परस्पर निर्भरता और द्वंद्व के दोनों तत्वों को साथ लेकर चलने की जरूरत है।

अभ्यास 2

स्तरीकरण सिद्धांत के महान संश्लेषण का क्या औचित्य है? अध्ययन केन्द्र के अन्य छात्रों के साथ इस प्रश्न पर चर्चा कीजिए और अपनी नोटबुक में एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

दूसरा, द्वंद्व और मतैक्य के प्रति इनका सरोकार एक-दूसरे पर हावी रहता है। प्रकार्यवादी तो मतैक्य को समाज की स्थिरता और उसके एकीकरण का मुख्य आधार मान कर चलता है। मगर द्वंद्वात्मक सिद्धांत संघर्ष या द्वंद्व को समाज के विखंडन और क्रांति का स्रोत मानता है। लेकिन बर्घ का कहना है कि इन दोनों का एक संयोजित सिद्धांत में मिलन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कोजर ने द्वंद्व के एकीकरणात्मक और स्थिरतकारी पहलू की ओर हमारा ध्यान खींचा है। विखंडन की ओर ले जाने की बजाए द्वंद्व सामाजिक व्यवस्था में एक परिवर्तनकारी और गतिशील साम्य या संतुलन बनाए रखने में

सहायक हो सकता। फिर कई समाज ऐसे भी हैं जिनमें द्वंद्व को इस तरह से संस्थागत और औपचारिक रूप दे दिया गया है कि वह उनके एकीकरण में सहायक दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक समाजों के मजदूर संघों यूनियनों की उपस्थिति औद्योगिक संबंधों के नियमन में सहायक है। मजदूरों के ये संगठन विखंडनकारी किस्म के वर्ग संघर्ष की संभावना को रोकने के लिए 'सेफ्टी वाल्व' की तरह काम करते हैं। ठीक इसी तरह विभिन्न समूहों में अत्यधिक एकता एक बहुविध समाज में अंत:समूह द्वंद्वों को जन्म दे सकता है, जिसमें विविध सांस्कृतिक समूह एक साथ रह रहे हों।

तीसरा, प्रकार्यवादी और द्वंद्ववादी/द्वंद्वात्मक सिद्धांत दोनों सामाजिक परिवर्तन की क्रमिक विकास की धारणा को लेकर चलते हैं। हालांकि ऐतिहासिक परिवर्तन की धारा में निहित चरणों और प्रक्रियाओं से जुड़ी ये धारणाएं एक दूसरे से अलग हैं, लेकिन इसके बावजूद वे उन्नति या विकास में समान रूप से विश्वास करते हैं। मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक सिद्धांत वर्ग संघर्ष के जरिए होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया का दर्शन देता है। मगर वहीं प्रकार्यवादी इस परिवर्तन को सामाजिक विभेदन की सतत प्रक्रिया का परिणाम मानते हैं। मगर जैसा कि बर्घ तर्क देते हैं, परिवर्तन के दोनों सिद्धांतों में कम से कम एक महत्वपूर्ण बात तो समान रूप से पाई जाती है। दोनों सिद्धांत यह मानकर चलते हैं कि सामाजिक व्यवस्था को एक निश्चत सोपान तक पहुंचने के लिए सभी पूर्ववर्ती चरणों से गुजरना जरूरी है। इसलिए वह उन सबको अपने में समाए रखता है भले ही वह अवशेष मात्र या परिवर्तित रूप में हो। चौथा, बर्घ दावा करते हैं कि प्रकार्यवादी और द्वंद्वात्मक या द्वंद्ववादी सिद्धांत दोनों "एक संतुलन मॉडल" पर आधारित हैं। प्रकार्यवादी सिद्धांत में तो यह साफ जाहिर हो जाता है मगर प्रस्थापना-('थीसिस')-प्रतिस्थापना-('एंटीथीसिस') संश्लेषण (सिंथेसिस) के द्वंद्वात्मक क्रम में भी साम्य या संतुलन का विचार निहित है। द्वंद्वात्मकता का सिद्धांत समाज को इस दृष्टि से देखता है कि वह संतुलन और असंतुलन के बदलते चरणों से गुजरता है। द्वंद्वात्मक सिद्धांत में संतुलन की अवधारणा गतिशील संतुलन की शास्त्रीय अवधारणा से भिन्न है, मगर दोनों दृष्टिकोणों को परस्पर विरोधी नहीं कहा जा सकता और न ही ये एकीकरण के दूर-व्यापी रुझान के अभ्युगम के असंगत हैं।

8.8 एन. लहमान का सामाजिक व्यवस्था सिद्धांत

अभी कुछ समय पहले, एन. लहमान ने समाज विज्ञान की बुनियादी समस्या को समझने के लिए सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। उन्होंने सामाजिक स्तरीकरण की मौजूदा व्याख्याओं के दायरे से निकलकर विश्लेषण की दृष्टि से एक संश्लेषित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। लहमान के अनुसार समाज के समाजशास्त्रीय सिद्धांत में व्यवस्थाओं या प्रणालियों के सामान्य सिद्धांत में क्रमिक विकास के सामान्य सिद्धांत का समावेश होना चाहिए, जिसमें इन सभी को परस्पर निर्भर माना जाए। इसी प्रकार समाज के सामान्य सिद्धांत को स्थिरता-परिवर्तन, संरचना-प्रक्रिया और मतैक्य-द्वंद्व के द्विभाजन से परे जाना चाहिए। इसी प्रकार द्वंद्व के सिद्धांत को मतैक्य सिद्धांत भी प्रदान करना चाहिए और प्रक्रिया के सिद्धांत को सामाजिक संरचना की भी व्याख्या करनी चाहिए।

बॉक्स 8.01

सामाजिक स्तरीकरण या सामाजिक असमानता पर जो भी साहित्य मौजूद है वह ज्यादातर इसे नैतिकता के परिप्रेक्ष्य से देखता है। यानी यह उसे 'अच्छा' या 'बुरा' रूप में लेता है। मार्क्सवादी विद्वान और द्वंद्ववादी सिद्धांतकार इसे प्रभुत्व और शोषण के रूप में लेते हैं और इसलिए इसे अनिवार्य रूप से बुरा कहते हैं। उधर, प्रकार्यवादी सिद्धांत समाज में काम कर रही स्तरीकरण प्रणाली जिन सामाजिक जरूरतों और अपेक्षाओं की पूर्ति करती है, उनकी बात करते हुए उसे सही ठहराता है। मगर लहमान सामाजिक स्तरीकरण को क्रमिक विकास के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं।

लहमान का तर्क है कि सिर्फ पराधीनता-प्रभुत्व/शोषण के मुद्दे पर ही केन्द्रित रहना या फिर समाज के लिए यह एकीकरण का जो कार्य करता है उसके आधार पर इसे उचित ठहराना, दोनों ही भ्रामक होगा। शुरुआत में स्तरीकरण समाज के आकार और जटिलता में वृद्धि का परिणाम था। समाज के आकार और उसकी परिभाषा में और वृद्धि होने से समाज के सभी सदस्यों के लिए निजी स्तर पर परस्पर प्रभावी क्रिया असंभव हो गई। "सामाजिक संप्रेषण" के लिए "वरणात्मक तीव्रकों" (सेलेक्टिव इंटेंसीफायर) की जरूरत

हुई। इस का समाधान स्तरीकरण ने निकाला। इसने समाज को असमान उप-व्यवस्थाओं में बांटा। इसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक परिवेश के साथ इसकी परस्पर प्रभावी क्रिया के स्तर पर तो असमानता एक मानक बन गई। मगर उप-समूह के अंदर समानता एक निर्देशक सिद्धांत, एक मानक बन गई, जो एक सामाजिक स्तर विशेष के सदस्यों के बीच संप्रेषण और सामाजिक परस्पर प्रभावी क्रिया या व्यवहार को संचालित करने लगी।

इस प्रकार शुरुआत में विभेदन की जो प्रक्रिया समाज के आकार और जटिलता में वृद्धि से आरंभ होती है, उसी से समाज में खंडीय विभाजन भी होता है। खंडीय विभाजन का एक चिर-परिचित उदाहरण वर्ण व्यवस्था है। इस चरण पर विभेदन की भूमिका परिवार के स्तर पर होती है और प्रत्येक खंड एक संवृत्त या बंद सामाजिक स्तर होता है। मगर विभेदन की प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती है उसकी जगह स्तरीकरण की वर्ग जैसी खुली व्यवस्था ले लेती है, "प्रकार्यात्मक विभेदन के प्रभाव जिसकी निरंतर पुनरुत्पत्ति करते हैं।"

8.9 गेरहार्ड लेंस्की: सत्ताधिकार और विशेषाधिकार सिद्धांत

इस इकाई में जिन तीन विद्वानों का हमने उल्लेख किया है उनमें गेहराई लेंस्की के कार्य में सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न सिद्धांतों का संश्लेषण करने का सबसे व्यवस्थित प्रयास मिलता है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *पॉवर ऐंड प्रिविलेज: ए थ्योरी ऑफ सोशल स्ट्रैटीफिकेशन* के पहले अध्याय में लेंस्की स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक स्तरीकरण के लिए एक संश्लेषित सिद्धांत की रूपरेखा बनाने के इस प्रयास में उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण तीन प्रश्नों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। सबसे पहले, वह स्तरीकरण के परिणामों के बजाए उसके कारणों को अधिक महत्व देते हैं जबकि अधिकांश विद्वानों ने स्तरीकरण के परिणामों को महत्व दिया है। दूसरा, जैसा कि उनकी पुस्तक के शीर्षक से संकेत मिलता है, उनका मुख्य विषय प्रतिष्ठा के बजाए सत्ताधिकार और विशेषाधिकार हैं। आखिर में वह सामाजिक स्तरीकरण को मानव समाज में वितरणात्मक प्रक्रिया के तुल्य मानते हैं, जिसके जरिए दुर्लभ मूल्यों का वितरण होता है।

इतिहास की दृष्टि से देखें तो वितरण और सामाजिक असमानता का प्रश्न तभी महत्वपूर्ण हो जाता है जब समाज बेशी उत्पादन करने लगता है, यानी वह एक निश्चित जनसंख्या के जीवित रहने के लिए जरूरी से अधिक उत्पादन करने लगता है। लेंस्की के लिए मूल प्रश्न यह था कि इस स्थिति में 'कौन कितना पाता है और क्यों पाता है'। उनका उत्तर सरल और स्पष्ट है: "समाज में पारितोषिकों का वितरण सत्ताधिकार (शक्ति) के वितरण का फलन हैं।" यह उत्तर संरचनात्मक प्रकार्यवादियों के प्रत्युत्तर में है जो पारितोषिकों के विभेदी वितरण को सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक जरूरतों के रूप में समझते हैं। लेंस्की का उत्तर हालांकि बड़ा सरल सा लगता है मगर सामाजिक स्तरीकरण का जो सिद्धांत उन्होंने रखा है वह काफी गहरा और विस्तृत है। उन्होंने समाज में सत्ताधिकार और विशेषाधिकार के ढांचे को तय करने वाली वितरण प्रणाली की कार्यशैली का एक बहुआयामी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

बॉक्स 8.02

वितरण प्रणाली को ढांचे की रचना तीन प्रकार की इकाइयों से होती है: व्यक्ति, वर्ग और वर्ग व्यवस्था। इनमें हर इकाई एक-दूसरे से जुड़ी होती है और एक वितरणात्मक प्रणाली के अंदर संगठन के एक भिन्न स्तर को दर्शाती है। लेंस्की के अनुसार व्यक्ति इस प्रणाली के बुनियादी स्तर पर रहते हैं। मगर वर्गों के भीतर वे उनकी इकाई बन जाते हैं। बदले में वर्ग भी वर्ग व्यवस्था में उनकी इकाई बनते हैं।

मगर लेंस्की ने वर्ग की जो धारणा रखी है वह कार्ल मार्क्स या मैक्स वेबर की धारणा से बिल्कुल भिन्न है। मार्क्स और वेबर वर्ग को मुख्यत: आर्थिक आधार पर परिभाषित करते हैं और उसे समाज की अर्थव्यवस्था का हिस्सा मानते हैं। लेकिन लेंस्की इसे बड़े व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हैं और इसके राजनीतिक आयामों पर अधिक जोर देते है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है, लेंस्की की दृष्टि में स्तरीकरण समाज का एक बहुआयामी पहलू है और इसीलिए वह वर्ग की एकआयामी परिभाषा को अस्वीकार करते हैं।

मानव समाज तरह-तरह से स्तरित रहता है और स्तरीकरण की इन वैकल्पिक रीतियों में हर एक वर्ग की एक भिन्न संकल्पना का आधार बनती है। इस प्रकार वर्ग व्यक्तियों का समूह या समष्टि भर नहीं है जिनकी समाज में एक साझी आर्थिक हैसियत होती है या उत्पादन के ढांचे में एक साझा पद-स्थान होता है। उनके अनुसार, वर्गों के विभिन्न प्रकार हो सकते हैं जैसे राजनीतिक वर्ग, जातीय वर्ग, प्रतिष्ठा वर्ग इत्यादि।

लेंस्की के अनुसार वर्ग "समाज में व्यक्तियों की एक समष्टि है, जो किसी प्रकार के सत्ताधिकार, विशेषाधिकार या प्रतिष्ठा के मामले में एक समान स्थिति में खड़े होते हैं।" मगर वह साथ में यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि अगर हमें सामाजिक स्तरीकरण की व्याख्या करनी हो या 'कौन क्या पाता है और क्यों पाता है' इस प्रश्न का समाधान करना है तो हमारा मुख्य सरोकार सत्ताधिकार वर्ग होना चाहिए। इसका कारण यह है कि प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार अमूमन सत्ताधिकार के वितरण से तय होते हैं। सत्ताधिकार वर्ग से लेंस्की का मतलब उन व्यक्तियों से है जिनकी पहुंच सत्ता या सत्ताधिकार के संस्थागत स्रोतों तक है या जिनके पास बल प्रयोग है। इस प्रकार उनकी वर्ग की परिभाषा में सबसे महत्वपूर्ण तत्व सत्ताधिकार है। लेकिन लेंस्की ने सत्ताधिकार और वर्ग को जिस तरह से परिभाषित किया है, उसके अनुसार व्यक्ति एक से अधिक वर्ग का सदस्य हो सकता है। उदाहरण के लिए, समकालीन भारतीय समाज में एक व्यक्ति संपत्ति स्वामित्व के मामले में मध्यम वर्ग का सदस्य, मगर वहीं वह कारखाने में नौकरी करने के कारण श्रमजीवी वर्ग का सदस्य और जाति से दलित होने के कारण वह अधीनस्थ संजातीय वर्ग का सदस्य भी हो सकता है। इन बड़ी भूमिकाओं में उसकी हर भूमिका और संपत्ति क्रम परंपरा में उसकी हैसियत, ये दोनों मिलकर उन चीजों और सुखों को प्राप्त करने के उसके अवसरों को प्रभावित करते हैं जिन्हें पाने की उसमें लालसा रहती है। इस प्रकार उसकी हर भूमिका उसे एक विशिष्ट वर्ग में रखती है। लेंस्की के अनुसार वर्ग स्थिति या हैसियत की यह बहुआयामिता व्यक्ति के प्रौद्योगिकी की दृष्टि से आदिम समाज से उन्नत समाज में आगे बढ़ने पर और अधिक प्रखर हो जाती है। वह तर्क देते हैं कि प्रत्येक असम या स्तरित व्यवस्था में द्वंद्व की सम्भावना मौजूद रहती है। प्रत्येक वर्ग के सदस्यों के साझे हित होते हैं जो अन्य वर्गों के प्रति उनमें वैमनष्य का संभावित आधार बनते हैं। एक वर्ग विशेष के सदस्यों का अपने साझे संसाधनों की रक्षा करने और उनका महत्व बढ़ाने और विरोधी वर्गों के संसाधनों के महत्व को घटाने में अपना निहित स्वार्थ होता है। लेकिन लेंस्की दावे के साथ यह नहीं कहते हैं कि वर्ग हमेशा मिल जुल कर कार्रवाई करते हैं या वे अपने साझे हितों के प्रति सजग होते हैं, वह यह भी नहीं कहते कि वे विरोधी वर्गों के प्रति हमेशा शत्रुतापूर्ण होते हैं। एक वर्गीय ढांचा संभावनाओं का संकेत देता है जिन्हें व्यक्ति फलीभूत बना सकता है, मगर उनके बारे में कुछ भी अपरिहार्य नहीं है।

बोध प्रश्न 2

1) बर्ध के सामाजिक स्तरीकरण को सिद्धांत की रूपरेखा पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

2) एन. लहमान के सामाजिक स्तरीकरण को व्यवस्था सिद्धांत के बारे में संक्षिप्त नोट लिखिए। अपना उत्तर लगभग पांच पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

3) लेंस्की के सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत में सत्ताधिकार और विशेषाधिकार का क्या स्थान है, बताइए। पांच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

लेंस्की के सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत का आखिरी घटक वर्ग व्यवस्था की अवधारणा है। उन्होंने वर्ग व्यवस्था को वर्गों की क्रम परंपरा के रूप में परिभाषित किया है जो किसी एक प्रतिमान के अनुसार श्रेणियों में बंटे होते हैं। लेकिन वर्ग व्यवस्था अकेली नहीं होती। वह तर्क देते हैं कि जब हम यह वास्तविकता जान लेते हैं कि सत्ताधिकार का आधार बहुविध है और इन्हें किसी अकेली कोटि या श्रेणी में समेट कर नहीं रखा जा सकता, तो वर्ग क्रम परंपराओं और वर्ग व्यवस्थाओं की शृंखला के रूप में सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

8.10 सारांश

सामाजिक असमानता या सामाजिक स्तरीकरण मानव इतिहास में बहस का सबसे बड़ा मुद्दा रहा है। सिर्फ समाजशास्त्रियों ने ही इसकी परस्पर विरोधी सैद्धांतिक व्याख्याएं नहीं दी हैं बल्कि साधारण चिंतकों, दार्शनिकों और धार्मिक नेताओं में भी यह बड़े ही विवाद का मुद्दा रहा है। हालांकि कई समाजशास्त्रियों ने इन परस्पर विरोधी सिद्धांतों की अलग-अलग कड़ियों को जोड़कर उन्हें संश्लेषित रूप देने का प्रयास भी किया है। बर्घ, लहमान और लेंस्की ऐसे ही तीन समाजशास्त्री हैं जिनके बारे में हमने आपको पीछे विस्तार से बताया है। लेकिन इस मुद्दे का अभी तक कोई संतोषप्रद समाधान नहीं निकल पाया है। बर्घ, लहमान और लेंस्की ने जो संश्लेषित या संयोजित सिद्धांत रखे हैं उन्हें सभी समाजशास्त्रियों ने स्वीकार नहीं किया है। पेशे से समाजशास्त्री और साधारण चिंतकों में स्तरीकरण के कारणों और परिणामों को लेकर मतभेद अभी भी जारी हैं।

8.11 शब्दावली

द्वंद्व सिद्धांत : इसमें स्तरीकरण को दो विरोधी वर्गों के परिणाम के रूप में लिया जाता है। इसके अनुसार जिस वर्ग के स्वामित्व में उत्पादन के साधन हैं वह मजदूर वर्ग का शोषण करता है।

प्रकार्यवादी सिद्धांत : इसमें समाज में प्रचलित प्रत्येक पद-स्थान और दर्जे को समाज को बनाए रखने और उसकी एकता के लिए सहायक माना जाता है।

संश्लेषण : यह सामाजिक स्तरीकरण से जुड़ी भिन्न दृष्टिकोणों को एक सरल सिद्धांत में जोड़ने का प्रयत्न है जिसके सूत्र अन्य सिद्धांतों में हैं।

8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बर्घ, पियरे वैन डेन (1963) “डायलेक्टिक ऐंड फंक्शनलिज्म: टुवार्ड ए थ्योरेटिकल सिंथेसिस” *अमेरिकन सोशयोलाजिकल रिव्यू* 28, पृ. 695-705

लेंस्की, (1966) *पॉवर ऐंड प्रिविलेज: ए थ्योरी ऑफ स्ट्रैटिफिकेशन*, न्यू यार्क, मैकग्रा हिल बुक कंपनी लहमान, एन. (1995), *सोशल* सिस्टम्स, स्टैनफर्ड यूनि० प्रेस।

8.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्रकार्यवादी सिद्धांतकार समाज को एक सजीव तंत्र की तरह देखते हैं जिसके विभिन्न अंग उसकी अनिवार्य जरूरतों को पूरा करते हैं। तंत्र या समाज की अपनी 'आवश्यकताएं' होती हैं। सामाजिक स्तरीकरण की प्रणाली उसी समाज की मूल्य व्यवस्था का प्रतिबिंब है। द्वंद्ववादी सिद्धांतकार सत्ताधिकार की धारणा प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार समाज में संघर्ष सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित, माननीय पद-स्थानों के लिए होती है। इस प्रकार प्रकार्यवादी साझे हितों को महत्व देते हैं तो दूसरी ओर द्वंद्ववादी सिद्धांतकार प्रभुत्व और शोषण पर अधिक जोर देते हैं।

2) संश्लेषण शब्द को लोकप्रिय हेगेल ने बनाया, जिसका आधार मानव असमानता की अनुभवजन्य सूचना है। सामाजिक स्तरीकरण अध्ययन में संश्लेषण की शुरुआत मैक्स वेबर से हुई थी। वेबर का मत वर्गों की ध्रुविताओं या नैतिक रुखों से आगे जाता है। इस प्रकार मार्क्स के चिंतन को पूंजीवाद में आगे विस्तार देने के प्रयास में वेबर वर्ग, सत्ताधिकार और प्रतिष्ठा पर मार्क्स से सहमत नहीं हैं। संश्लेषण की दिशा में शुरुआती प्रयासों में पैरेटो, सोरोकिन और ओसोव्स्की के कार्य शामिल हैं।

बोध प्रश्न 2

1) बर्घ का स्तरीकरण सिद्धांत *उदात्त* संश्लेषण का प्रयास है। बर्घ के अनुसार प्रकार्यवाद और मार्क्सवाद दोनों सामाजिक यथार्थ के सिर्फ एक पहलू पर ही जोर देते हैं। उनका मानना है कि ये सिद्धांत इन बिन्दुओं पर मिलते हैं कि ये (i) साकल्यवादी हैं, (ii) दोनों के मूल में सामाजिक परिवर्तन की विकासात्मक धारणा है और (iii) ये एक साम्य या संतुलनवादी मॉडल पर आधारित हैं।

2) लहमान ने सामाजिक स्तरीकरण की व्याख्या के लिए सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत रखा था। उनके सिद्धांत में 'क्रमिक विकास' का सिद्धांत और संप्रेषण का सिद्धांत दोनों का समावेश है। लहमान द्वंद्व या मतैक्य को अंतिम संकेत नहीं मानते। उनका कहना है कि समाज का विकास आमने-सामने की परस्पर प्रभावी क्रिया के फलस्वरूप एक विशाल संख्या में हुआ और इससे असम या विषम उपव्यवस्थाएं उत्पन्न हो गईं जैसे, वर्ण व्यवस्था। समाज का जैसे-जैसे क्रमिक विकास होता है उसमें अधिक खुलापन आ जाता है और वह वर्ग जैसा बन जाता है।

3) लेंस्की ने अपने अध्ययनकार्य का विषय मुख्यतया (i) सामाजिक स्तरीकरण के कारणों, (ii) सत्ताधिकार और विशेषाधिकार और (iii) वितरण प्रक्रिया को बनाया। लेंस्की कहते हैं कि जब उत्पादन बेशी होता है तो उससे वितरण का प्रश्न उठता है और इससे सामाजिक विषमता उत्पन्न होती है। वितरण प्रणाली स्वयं व्यक्तियों, वर्गों और वर्ग व्यवस्था से बनती है इसलिए लेंस्की के मत में सत्ताधिकार, विशेषाधिकार या प्रतिष्ठा ही वर्ग बनाते हैं। उनकी परिभाषा बहुआयामी है, जो हमें वर्ग परंपरा की शृंखला और वर्ग व्यवस्थाओं के बारे में सोचने के लिए विवश करती है।